

एस. गोविंदा मेनन

बनाम

भारत संघ और ए. एन. आर.

2 फरवरी, 1967

[के. एन. वांचू और वी. रामास्वामी, जे. जे.]

अखिल भारतीय सेवाएँ (अनुशासन और अपील नियम), 1955-आर.

4(1), 5(2), 7(1)

मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 एसएस।

20, 29, 80, 81, 99, 100 (2)(एम)।

'एकमात्र निगम' के रूप में कार्य करने वाला सरकारी कर्मचारी-अलेगा कर्तव्यों के निर्वहन में कदाचार के आरोप-क्या नियम 4(1) के तहत उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई की जा सकती है या उसके फैसलों पर केवल अपील या निगरानी या संशोधन में ही सवाल उठाया जा सकता है- क्या नियम 17(1) के तहत निलंबन का आदेश नियम 5(2) के तहत आरोप विरचना के बाद ही आदेश दिया जा सकता है। एस (2)-क्या पांच साल से अधिक के लिए पट्टे सार्वजनिक नीलामी द्वारा दिए जाने की आवश्यकता है। क्या कमिशनरी स्वयं पट्टों के प्रस्तावों की शुरुआत कर सकता है। अपीलार्थी, जो भारतीय परशासनिक सेवा का सदस्य था और

राजस्व बोर्ड, केरल राज्य के पहले सदस्य, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ दान के आयुक्त के पद पर थे, उनके खिलाफ कुछ पट्टों के अनुदान के संबंध में कुछ शिकायतों की गई थीं। राज्य सरकार ने उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की और उन्हें भारत सेवा (अनुशासन और अपील) नियम, 1955 के नियम 7 के तहत निलंबित कर दिया। आरोपों की जांच के लिए नियम 5 के तहत एक जांच अधिकारी नियुक्त किया गया था। अपीलार्थी ने उसके खिलाफ शुरू की गयी कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रमाणपत्र की 'उत्प्रेषण रिट' याचिका दायर की और राज्य सरकार द्वारा उन्हें राजस्व बोर्ड में सदस्य हेतु कार्य करने की अनुमति हेतु 'परमादेश की रिट' याचिका दायर की। इस बीच, जांच अधिकारी द्वारा केंद्र सरकार को अपीलार्थी को कुछ आरोपों का दोषी होने की एक रिपोर्ट भेजी गयी व उन्हें हेतुक दर्शित करने हेतु नोटिस दिया गया। इस स्तर पर अपीलार्थी ने अपनी रिट याचिका में संशोधन के लिए आवेदन किया और उसे प्राप्त किया और संशोधित याचिका द्वारा निषेध के एक रिट की मांग की गई केंद्र सरकार को हेतुक दर्शित करने वाले नोटिस के संबंध में आगे बढ़ने और उसे रद्द करने के लिए 'प्रतिषेध रिट' की मांग की गयी। रिट याचिका को उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया था।

इस न्यायालय में प्रस्तुत अपील में, यह तर्क दिया गया था, इंटर अलिया अपीलार्थी के लिए (i) धारा 80 मद्रास अधिनियम 1951 के अनुसार आयुक्त एकमात्र निगम होगा व आयुक्त की क्षमता में कार्य करने वाला व्यक्ति एक सरकारी कर्मचारी नहीं है इसलिए नियम 4(1) के तहत उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं था; (ii) आयुक्त पट्टों को मंजूरी देने में एक अर्ध न्यायिक कार्य का प्रयोग कर रहा था जो कि उसके खिलाफ शिकायतों का मामला था इसलिए उसके आदेश पर अधिनियम की धारा 29(4) के तहत आपत्ति में प्रश्न उठाया जा सकता है या सरकार द्वारा धारा 99 में निगरानी के तहत जांचा जा सकता है न कि कार्यकारी सरकार और अनुशासनात्मक कार्यवाही के माध्यम से; (iii) अपीलार्थी के विरुद्ध मुख्य आरोप टिकाऊ - बिना नीलामी के पांच साल से अधिक समय के लिए पट्टों को मंजूरी देने या निर्दिष्ट व्यक्तियों के पक्ष में पट्टों के लिए प्रस्ताव शुरू करने में कुछ भी अनुचित नहीं था; (iv) औपचारिक आदेश के अभाव में नियम 4 (1) के तहत कार्यवाही अमान्य थी।

इन कार्यवाहियों को स्थापित करना; और (v) अपीलार्थी को तब तक निलंबित नहीं किया जा सकता जब तक कि उसके खिलाफ आरोप तय नहीं हो जाते।

प्रतिपादित: प्रतिषेध की रिट को स्वीकार करते हुए अनुच्छेद 226 के अंतर्गत कोई मामला नहीं बनाया पाया गया था।

राजा वी। उत्तर [1927] 1 के. बी. 491; रेजिना वी। नियंत्रक-सामान्य

पेटेंट और डिजाइन [1953] 2 डब्ल्यू. एल. आर. 760,765; पेरिसियन बास्केट शूज प्रोपराइटरी लिमिटेड बनाम। व्हाइट 59 सी. एल. आर. 369, संदर्भित।

(i) भले ही अपीलार्थी जब वे आयुक्त के रूप में कार्य कर रहे थे, प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन न हो आयुक्त के रूप में उनका कार्य या चूक नियम 4 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही का विषय बन सकता है, बशर्ते कि कार्य या चूक सेवा के सदस्य के रूप में ईमानदारी या कर्तव्य के प्रति समर्पण के लिए उनकी प्रतिष्ठा को प्रतिबिंबित करेगी। [574 बी]

पीयर्स वी। फोस्टर 17 क्यू. बी. डी. 536,542; संदर्भित किया गया।

इस तर्क में कोई बल नहीं था कि आयुक्त के पास एकमात्र निगम के रूप में अलग कानूनी व्यक्तित्व है और इसलिए अनुशासनात्मक कार्यवाही से वो मुक्त है। [575 एफ]

(ii) अपीलार्थी के विरुद्ध आरोप इस आशय के थे कि आयुक्त के रूप में अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए, उन्होंने अपनी शक्तियों का दुरुपयोग

किया और इस तरह के कदाचार के संबंध में उनके खिलाफ कार्रवाई की जा रही थी। इसलिए, हालांकि अधिनियम के तहत अपील या संशोधन में पट्टों को मंजूरी के औचित्य और वैधता पर सवाल उठाया जा सकता है, सरकार को कदाचार के लिए अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से नहीं रोका गया था।

[577 एच]

(iii) यह तर्क कि अपीलार्थी के खिलाफ मुख्य आरोप था टिकाऊ नहीं होने को अस्वीकार किया जाना चाहिए। आयुक्त के पास नीलामी के बिना किसी भी पट्टे को मंजूरी देने का कोई अधिकार नहीं है। नियम 1 के अनुसार धारा 100(2)(एम) में फ्रेम किये सार्वजनिक नीलामी सभी पट्टों को शामिल करता है और धारा 29(1) की परिधि में आने वाले 5 साल से अधिक के पट्टों के संबंध में भी कोई अपवाद नहीं है। 29(1) इसके अलावा, आयुक्त के पास धारा 20 के तहत न्यास की संपत्तियों के पट्टे के लिए विशिष्ट प्रस्ताव शुरू करने की कोई शक्ति नहीं है। [579 ए-सी]

(iv) नियम 4 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने वाले आदेश की सामग्री से पता चलता है कि सरकार द्वारा तब तक की कार्यवाही को स्वीकार कर लिया गया था और अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने का फैसला किया गया। इसलिए नियमों के नियम 4 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई औपचारिक

आदेश की आवश्यकता नहीं थी। राज्य सरकार द्वारा पारित आदेश को अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने वाले नियमों के नियम 1 के तहत एक आदेश माना जाना चाहिए। [580 एफ: 581 ई, एफ)

(v) उसके विरुद्ध केवल नियम 5(2) के अनुसार आरोप विरचना के बाद ही किया जा सकता है। धारा 5(2) के अंतर्गत आरोपों की विरचना सेवा के सदस्य को अपने विरुद्ध केस की पालना हेतु आवश्यक है- जब कि धारा 7(1) सरकार यदि संतुष्ट हो कि आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है तो उसे सस्पेंड कर सकती है। नियम 7(1) में 'आरोप' का व्यापक अर्थ सेवा के सदस्य के खिलाफ आरोपों या इलजाम को दर्शाने के रूप में दिया जाना चाहिए।[582 डी-एफ] धारा 5(2) के अंतर्गत आरोपों की विरचना सेवा के सदस्य को अपने विरुद्ध केस की पालना हेतु आवश्यक है- जबकि धारा 7(1) सरकार यदि संतुष्ट हो कि आरोपों की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आवश्यक है तो उसे सस्पेंड कर सकती है। नियम 7(1) में 'आरोप' का व्यापक अर्थ सेवा के सदस्य के खिलाफ आरोपों या इलजाम को दर्शाने के रूप में दिया जाना चाहिए।

सिविल अपीलीय न्यायनिर्णय: सिविल अपील सं. 1366/1966.

केरल उच्च न्यायालय की Original Petition No. 1 of 1964 के निर्णय और आदेश दिनांकित 5 जनवरी, 1966 से अपील/अपीलार्थी व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए।

प्रतिवादी संख्या 1 के लिए एन. एन. बिंद्रा और आर. एच. डेबर।

सरजू प्रसाद, एन. एन. वैकिताचलम, ए. जी. पुडिसेरी और एम. आर. के. पिल्लल, प्रतिवादी संख्या 2 के लिए।

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था।

न्यायमूर्ति रामास्वामी, यह अपील केरल उच्च न्यायालय के 5 जनवरी, 1966 के फैसले के खिलाफ प्रमाण पत्र द्वारा प्रस्तुत की गई है। अपीलार्थी द्वारा दायर 1964 की मूल याचिका संख्या 1 को खारिज करना है। अपीलार्थी श्री एस. गोविंदा मेनन भारतीय प्रशासनिक सेवा के सदस्य हैं। वे राजस्व बोर्ड, केरला के पहले सदस्य थे। वह केरल राज्य के राजस्व विभाग में कार्यरत थे और हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती के आयुक्त के पद पर कार्यरत थे। आयुक्त के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अपीलार्थी के खिलाफ कदाचार के आरोपों वाली कुछ याचिकाओं के आधार पर केरल सरकार ने कुछ प्रारंभिक जांच शुरू की और वहां अपीलार्थी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने के बाद और उसे अखिल भारतीय सेवा के नियम 7 के तहत निलंबित भी कर दिया। (अनुशासन

और अपील) नियम, 1955, जिसे इसके बाद 'नियम' कहा जाता है। अपीलार्थी को कुछ आरोपों के बयान के साथ आरोपों की एक प्रति दी गई थी, जिसने इसके बाद बचाव का एक लिखित बयान दायर किया था। लिखित बयान कानून को देखने के बाद सरकार ने आदेश पारित किया कि उनका स्पष्टीकरण अस्वीकार्य था और नियमों के नियम 5 के तहत नियुक्त किए जाने वाले एक जांच अधिकारी द्वारा आरोपों की जांच की जानी चाहिए। तदनुसार श्री टी. एन. एस. राघवन, एक सेवानिवृत्त आई. सी. एस. अधिकारी को जाँच करने के लिए नियुक्त किया गया था। इसके बाद अपीलार्थी ने केरल उच्च न्यायालय के समक्ष वर्तमान रिट याचिका दायर की जिसमें उसके खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही को रद्द करने के लिए प्रमाण पत्र का एक रिट देने और प्रत्यर्थी संख्या 2, केरल राज्य से उसे राजस्व बोर्ड के पहले सदस्य के रूप में कार्य करने की अनुमति देने के लिए 'अनिवार्य रिट' देने का अनुरोध किया गया था। चूंकि स्थगन आदेश के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था और स्थगन का कोई आदेश पारित नहीं किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय द्वारा श्री टी. एन. एस. राघवन ने जांच शुरू की गयी और उसके द्वारा अपीलार्थी को 1 से 4 और 9 तक के आरोपों का दोषी पाते हुए केंद्र सरकार को उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी। भारत संघ द्वारा विचार के बाद रिपोर्ट के अनुसार, एक 'कारण दिखाएँ पूर्व नोटिस' जारी किया गया जो कि पी-9 है। इसके बाद

अपीलार्थी ने रिट याचिका में संशोधन के लिए उच्च न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया। इस संशोधित याचिका में यह प्रार्थना भारत के प्रथम प्रतिवादी संघ को 'कारण दिखाएँ

नोटिस' के अनुसरण में आगे बढ़ने से रोकने और उसे रद्द करने के लिए एक 'प्रतिषेध' रिट जारी करने के लिए थी। संशोधन के लिए आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा अनुमति दी गई थी। अपीलार्थी का मुख्य तर्क था कि उसके खिलाफ शुरू की गई कार्यवाही पूरी तरह से अधिकार क्षेत्र के बिना थी क्योंकि कोई भी अनुशासनात्मक कार्यवाही गोविंदा मेनन बनाम नहीं हो सकती थी। उनके खिलाफ मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 (1951 का मद्रास अधिनियम XIX) जिसे बाद में 'अधिनियम' कहा गया के तहत आयुक्त के रूप में उनके काम के संबंध में कार्यों और चूक के लिए लिया गया और उनके द्वारा दिए गए आदेशों को अर्ध-न्यायिक चरित्र का होने के कारण केवल उस अधिनियम के तहत लिए गए उचित प्रावधानों में ही आक्षेप किया जा सकता है। दोनों पक्षों की ओर से दलीलें सुनने के बाद मैथ्यू, जे. ने अधिकार क्षेत्र की कमी के संबंध में अपीलार्थी द्वारा उठाई गई आपत्तियों को खारिज कर दिया और कहा कि प्रत्यर्थियों के पास आरोपों की जांच के साथ आगे बढ़ने की शक्ति है। दूसरी ओर, न्यायमूर्ति एस. वेलु पिल्लई का विचार था कि अर्ध न्यायिक निर्णय अंतिम और निर्णायक हो जाते हैं यदि उन्हें कानून द्वारा निर्धारित तरीके से

अलग या संशोधित नहीं किया जाता है और यदि निर्णयों को इस तरह से चुनौती नहीं दी जाती है, तो उनकी शुद्धता या वैधता को निर्णायक माना जाना चाहिए, और ऐसे अर्ध न्यायिक निर्णय अपीलार्थी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही में आरोपों का विषय नहीं बन सकते हैं। न्यायाधीश वेतु पिल्लै ने अभिनिर्धारित किया कि इसलिए केंद्र सरकार के पास आरोप 1 के पहले भाग, आरोप 2, आरोप 3 के पहले भाग और आरोप 4 के पहले भाग पर जांच के साथ आगे बढ़ने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है, लेकिन केंद्र सरकार के पास आरोप संख्या 1 के दूसरे भाग, आरोप संख्या 3 के दूसरे भाग और आरोप संख्या 9 के संबंध में जांच मामले को आगे बढ़ाने का क्षेत्राधिकार है। इस मतभेद को ध्यान में रखते हुए मामला न्यायमूर्ति गोविंदा मेनन के समक्ष रखा गया था, जो न्यायमूर्ति मैथ्यू द्वारा लिए गए विचार से सहमत थे और परिणामस्वरूप अपीलार्थी की रिट याचिका खारिज कर दी गई थी।

इस स्तर पर अपीलार्थी के खिलाफ लगाए गए आरोपों को निर्धारित करना आवश्यक है। अपीलार्थी आरोप 1 से 4 मुख्य रूप से 5 देवस्वोमों की निजी वन भूमि के संबंध में 30 पट्टों को मंजूरी देने में अपीलार्थी के आचरण से संबंधित हैं और आरोप संख्या 9 राष्ट्रीय आपातकाल से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण मामलों पर विचार करने के लिए मुख्य सचिव द्वारा बुलाए गए सम्मेलन में भाग लेने के लिए अपीलार्थी द्वारा इनकार करने से संबंधित है

प्रथम आरोप से संबंधित पट्टों में से 17 पट्टों की अवधि 36 वर्ष है। एक मामले में अवधि 96 वर्ष है और बाकी पट्टों में पट्टे की अवधि 99 वर्ष है। सभी पट्टों द्वारा कवर किया गया कुल क्षेत्र 50,000 एकड़ से के करीब है। आरोप 1 से 4 और 9 तक इस प्रकार हैं:

"1. कि आप, श्री एस. गोविंदा मेनन, (आई.ए.एस.), सरकारी सेवा में सदस्य के रूप में कार्यरत रहते हुए, राजस्व बोर्ड और आयुक्त और एच. आर. एंड सी. ई. (प्रशासन) विभाग द्वारा 1-2-1957 से 19-10-1962 तक व्यापक और मूल्यवान वस्तुओं के पट्टे देने के लिए प्रतिबंध जारी किए गए आयुक्त के रूप में कार्यरत रहते हुए आपके नियंत्रण में देवस्वोम की वन भूमि जैसे (i) परम्ब देवस्वोम आदि, प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना में मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 और उसके अधीन जारी किए गए नियम। आपने स्वयं पट्टों के लिए प्रस्ताव शुरू किए थे जो न्यासी द्वारा बनाया जाना चाहिए था और पट्टों को मंजूरी देकर उन पर निर्णय लेना चाहिए था। उपर्युक्त पट्टों के कई मामलों में और अन्यथा आम तौर पर बंदोबस्ती के प्रशासन पर आपके द्वारा प्रयोग किए गए

नियंत्रण और पर्यवेक्षण के संबंध में, आपका आचरण इस तरह रहा है: अपने वैधानिक कार्य के लिए अयोग्य ठहराने जैसा रहा है। मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ के तहत कर्तव्य दान अधिनियम या सरकार के एक जिम्मेदार अधिकारी के रूप में।

2. कि आपने पट्टे के लिए प्रीमियम तय किया था, किराया और लकड़ी का मूल्य मनमाने ढंग से इस बात की परवाह किए बिना तय किया कि क्या वे संस्थाओं के लिए फायदेमंद थे जैसा कि आपको अधिनियम के तहत करने की आवश्यकता थी और इस तरह आपने गलत लाभ कमाया और पट्टेदारों और देवस्वोमों को गलत नुकसान पहुंचाया।

3. कि आपने न केवल पट्टों के लिए प्रस्ताव शुरू किए और उन्हें स्वयं स्वीकृत किया, बल्कि पट्टेदारों को भूमि के कब्जे में रखने और उन पेड़ों को गिराने के लिए भी आगे की कार्रवाई की, जिनके लिए अधिनियम और

नियमों के तहत आपको कोई अधिकार नहीं था। विशेष रूप से आपने कोझिकोड के कलेक्टर को प्रभावित करने का प्रयास किया। एम. पी. पी. एफ. अधिनियम के तहत निजी वनों के पट्टों को मंजूरी देने के लिए वैधानिक होकर अपने निजी सहायक को कलेक्टर के निजी सहायक को लिखने के लिए प्रेरित करना ताकि राजस्व बोर्ड के प्रथम सदस्य के रूप में अपने आधिकारिक पद का भार उनके आधिकारिक वरिष्ठ के रूप में उठाने और कलेक्टर को उसके वैधानिक कर्तव्य को प्रभावित किया। उस पर सहन करना और प्रति में कलेक्टर को प्रभावित करना उसके वैधानिक कर्तव्य का स्वरूप।

4. अखिल भारतीय सेवा (आचरण) नियम 1954 के नियम 3 के प्रावधान के विपरीत, जिसमें सेवा के प्रत्येक सदस्य को सभी आधिकारिक मामलों में पूर्ण अखंडता बनाए रखने का आदेश दिया गया है, आपने अपने रिश्तेदारों, पड़ोसियों और दोस्तों को विभिन्न देव वृक्षों से संबंधित मूल्यवान वन भूमि के पट्टे को मंजूरी दी है।

9. कि 29-10-1962 पर आपने राजस्व बोर्ड के सदस्यों और पुलिस महानिरीक्षक मुख्य सचिव के सौजन्य से आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने से इनकार कर दिया। सचिवालय में मुख्य सचिव द्वारा राष्ट्रीय आपातकाल से जुड़े मामले में और महत्वपूर्ण चर्चा करने के लिए बुलाया गया था। इस प्रकार कर्तव्य की घोर अवहेलना और मुख्य सचिव की अभद्रता का दोषी मुख्य सचिव के सौजन्य से "।

अधिनियम की धारा 20 में प्रावधान किया गया है कि सभी धार्मिक दान का प्रशासन सामान्य पर्यवेक्षण और आयुक्त के नियंत्रण के अधीन होगा और इस तरह के पर्यवेक्षण और नियंत्रण में कोई भी आदेश पारित करने की शक्ति शामिल होगी जो दान के उचित प्रशासन के लिए आवश्यक समझा जा सकता है। दानों को। अधिनियम की धारा 29 में कहा गया है कि कोई भी बिक्री, उदा. परिवर्तन या बंधक और पाँच वर्ष से अधिक की अवधि के लिए कोई पट्टा किसी भी धार्मिक संस्था से संबंधित कोई अचल संपत्ति null और void होगा जब तक कि यह आयुक्त द्वारा संस्था के लिए आवश्यक या लाभकारी होने से स्वीकृत नहीं किया जाता है और आयुक्त मंजूरी के पूर्व, प्रस्तावित लेने-देने का विवरण प्रकाशित करेगा, लेन-देन,

आपत्तियाँ आमंत्रित करेगा और उन पर विचार करेगा। उप-धारा (3) मंजूरी देने वाले आदेश की एक प्रति सरकार और न्यासी को संप्रेषित करने का प्रावधान करता है। उप-धारा (4) में आयुक्त के आदेश के खिलाफ न्यासी या ब्याज रखने वाले किसी भी व्यक्ति द्वारा सरकार में अपील करने का प्रावधान है।

"99. (1) सरकार माँग और जाँच कर सकती है आयुक्त या किसी उप या सहायक का अभिलेख किसी क्षेत्र समिति के आयुक्त या किसी न्यासी के किसी भी कार्यवाही के संबंध में, जिसमें कार्यवाही नहीं है जिसके संबंध में किसी न्यायालय में एक मुकदमा या अपील प्रदान की जाती है। इस अधिनियम द्वारा, की नियमितता के बारे में खुद को संतुष्ट करने के लिए ऐसी कार्यवाही या शुद्धता, वैधता या औचित्य उसमें पारित किसी निर्णय या आदेश का; और, यदि, किसी भी मामले में, सरकार को ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा कोई निर्णय या आदेश को संशोधित, रद्द, उलट या प्रेषित किया जाना चाहिए। पुनर्विचार के लिए, वे तदनुसार आदेश पारित कर सकते हैं: बशर्ते कि सरकार कोई आदेश पारित नहीं करेगी। किसी भी पक्ष के लिए पूर्वाग्रहपूर्ण जब

तक कि उसके पास एक उचित निर्णय न हो अपना प्रतिनिधित्व करने का अवसर "।

प्रतिषेध के एक रिट के अनुदान के लिए अधिकार क्षेत्र मुख्य रूप से है निम्नतर न्यायाधिकरणों को ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने से जो वे नहीं करते हैं उन्हें सीमा से अधिक होने से रोकने के लिए उनके अधिकार क्षेत्र। दूसरे शब्दों में, इसका उद्देश्य निचली या सीमित अधिकार क्षेत्र की अदालतों या न्यायाधिकरणों को उनकी सीमा के भीतर सीमित करना है। यह अच्छी तरह से तय है कि निषेध की रिट न केवल क्षेत्राधिकार के लिए निहित है, बल्कि यह रिट प्राकृतिक न्याय के नियमों से अलग होने के मामले में भी निहित है (हैल्सबरी के लेख देखें)। इंग्लैंड के कानून, तीसरा संस्करण।, खण्ड. 11, पी। 114). यह उदाहरण के लिए अपील न्यायालय द्वारा द किंग बनाम Matt में आयोजित किया गया था। चूंकि 24 जुलाई, 1925 के स्थायी न्यायालय के न्यायाधीश का आदेश दिनांक 24 जुलाई, 1925 पादरी को उसके बचाव में सुनवाई का अवसर दिए बिना किया गया था, इसलिए आदेश प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का उल्लंघन करते हुए किया गया था और इसलिए यह अधिकार क्षेत्र के बिना किया गया आदेश था और निषेध का आदेश जारी किया जाना चाहिए। लेकिन यह रिट एक

न्यायाधिकरण के course, practice या प्रक्रिया को सही करने के लिए नहीं लगाई जा सकती है, या एक गलत कार्यवाहियों के गुण-दोष पर निर्णय। यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि कानून की त्रुटि के लिए किसी अदालत या निम्न न्यायाधिकरण को निषेध का रिट तब तक जारी नहीं किया जा सकता जब तक कि त्रुटि इसे अपने अधिकार क्षेत्र से बाहर नहीं ले जाती। अधिकारिता (रेजिना बनाम देखें। नियंत्रक-पेटेंट और डिजाइन के जनरल, (1) और पेरिसियन बास्केट शूज प्रोपराइटरी लिमिटेड v. क्यों (2)। इसलिए अभाव के बीच एक स्पष्ट अंतर बनाए रखा जाना चाहिए। अधिकारिता और जिस तरह से इसका प्रयोग किया जाता है। यदि अधिकारिता की कमी है तो मामला गैर-न्यायिक है और निषेध का एक रिट अदालत या निम्न न्यायाधिकरण के पास होगा जो इसे अपने अधिकार क्षेत्र से अधिक कार्यवाही जारी रखने से मना करेगा।

अपीलार्थी द्वारा रखा गया पहला प्रस्ताव यह है कि आयुक्त एक निगम है और सरकार का सेवक नहीं है और आयुक्त के रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति के खिलाफ सरकार को अनुशासनात्मक कार्रवाई करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है। एस को संदर्भ दिया गया था। 80 अधिनियम में कहा गया है कि "आयुक्त एकमात्र निगम होगा और उसके पास स्थायी उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर होगी और वह अपने निगमित नाम पर मुकदमा कर सकता है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है।" यह तर्क दिया गया था कि आयुक्त के रूप में अपीलार्थी के कार्यों और चूक

पर किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही में सवाल नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि आयुक्त अपने प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन सरकार का सेवक नहीं है। इस प्रस्ताव की जांच करने से पहले नियमों के नियम 4 पर विचार करना आवश्यक है जिसमें कहा गया है:

"4. कार्यवाही शुरू करने और जुर्माना लगाने का अधिकार।

(1) जहाँ सेवा के किसी सदस्य ने कोई कार्य या चूक की जो उसे नियम 3 में निर्दिष्ट किसी भी दंड के लिए उत्तरदायी बनाता है-

(क) यदि ऐसा कार्य या चूक सेवा में उनकी नियुक्ति से पहले की गई थी तो जिस सरकार के अधीन वह सेवा कर रहा है वो अकेले ही उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में सक्षम होगी और उपनियम (2) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए, जो वह उचित समझें उस पर नियम 3 में विनिर्दिष्ट दंड अधिरोपित कर सकेगा।

(ख) यदि ऐसा कार्य या चूक सेवा में उनकी नियुक्ति के बाद किया गया था तो वो सरकार जिसके तहत ऐसा सदस्य ऐसा कार्य या चूक करने के समय सेवारत था ही उनके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने में सक्षम होगी और उपनियम (2) के प्रावधानों के अधीन रहते हुए और वो सरकार जिसकी मामले में संस्थित होने के समय सेवारत था। ऐसी कार्यवाहियों की स्थापना के लिए सभी उचित सुविधाएं प्रदान करने के लिए बाध्य होगा।

(2) केंद्र सरकार के आदेश को छोड़कर बर्खास्तगी, हटाने या अनिवार्य सेवानिवृत्त करने का दंड सेवा के किसी सदस्य पर नहीं लगाई जाएगी।

यह विवादित नहीं है कि उपयुक्त सरकार के पास शक्ति है अपीलार्थी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही करें और वह कर सकता है केंद्र सरकार के आदेश से सेवा से हटाया जाए, लेकिन यह तर्क दिया गया कि आई. ए. एस. अधिकारी वैधानिक नियम द्वारा शासित होते हैं कि नियम 4 (1) में निर्दिष्ट 'कोई कार्य या चूक' केवल संबंधित है। शासन के अधीन सेवा करते समय किसी अधिकारी के कार्य या चूक से संबंधित और "सरकार के अधीन सेवा करना" का अर्थ है - सरकार का प्रशासनिक नियंत्रण में और अनुशासनात्मक कार्यवाही इसलिए स्वामी और सेवक के संबंधों के आधार पर होनी चाहिए। यह तर्क दिया गया था कि आयुक्त की शक्तियाँ प्रशासनिक के अधीन नहीं थीं और इसलिए अपीलार्थी के खिलाफ अपने कार्य के दौरान उसके द्वारा किये गये किसी कार्य या चूक के संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाहियां दर्ज नहीं की जा सकती। हम एयू अपीलार्थी इस प्रस्ताव को स्वीकार करने में असमर्थ है कि नियम 4 (1) में कोई प्रावधान नहीं है। कार्य या चूक की प्रकृति के रूप में किसी प्रकार सीमा या योग्यता जिसके संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की जा सकती है। नियम 4 (1) (ख) केवल यह कहता है कि उपयुक्त सरकार सेवा के किसी

सदस्य के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने हेतु समुचित सरकार वह सरकार होगी जिसके अधीन ऐसा सदस्य कार्य या चूक के समय सेवारत रहा हो। यह करता है। यह नहीं कहता कि कार्य या चूक उसके द्वारा अपने कर्तव्य के निर्वहन में या सरकारी कर्मचारी के कार्य के दौरान किया गया होना चाहिए। इसलिए यह सरकार अपीलार्थी के खिलाफ उसके संबंध में अनुशासनात्मक कार्यवाही करें। ऐसे कार्य या चूक जो उनकी प्रतिष्ठा को प्रतिबिंबित करते हैं के सदस्य के रूप में सेवा करते हुए उनकी ईमानदारी या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण सेवा करते हैं। यह विवादित नहीं है कि अपीलार्थी सदस्य कथित कवाचार के समय राजस्व बोर्ड के सदस्य था और वह एक ही समय में अपने कर्तव्यों की पालना कर रहा था। प्रथम सदस्य के रूप में अपने कर्तव्यों के अलावा अधिनियम के तहत आयुक्त बोर्ड के सदस्य हमारी राय में अनुशासनात्मक कार्यवाही का विषय बनने हेतु यह आवश्यक नहीं है कि सेवा के किसी सदस्य को सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन के दौरान कथित कार्य या चूक की गयी हो। दूसरे शब्दों में यदि कार्य या चूक ऐसी है जो अधिकारी की ईमानदारी या सद्भावना या कर्तव्य के प्रति समर्पण के लिए उसकी प्रतिष्ठा को दर्शाती है, तो कोई कारण नहीं है कि उसके खिलाफ उस कार्य या चूक के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए, भले ही कार्य या चूक किसी ऐसी गतिविधि से संबंधित हो जिसके संबंध में कोई वास्तविक स्वामी और सेवक संबंध न हो। इसे अलग तरह से रखे तो परीक्षा यह नहीं

है कि क्या कार्य चूक अपीलार्थी द्वारा अपने सरकार के सेवक के रूप में कर्तव्य के निर्वहन के दौरान की गयी थी। परीक्षा यह है कि क्या कार्य या चूक का उसकी सेवा की प्रकृति व स्थिति से कुछ उचित संबंध है या कार्य चूक ने एक लोक सेवक के रूप में निष्ठा या कर्तव्य के प्रति समर्पण के लिए सेवा के सदस्य की प्रतिष्ठा पर कोई प्रतिबिंब डाला है या हमारी राय है कि भले ही अपीलकर्ता सरकार के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन नहीं था जब वह कार्य कर रहा था अधिनियम के तहत आयुक्त और प्रासंगिक समय पर उसके आदेशों के अधीन सरकार का सेवक नहीं था, हमारी राय है कि भले ही अपीलार्थी जब अधिनियम के तहत आयुक्त के रूप में कार्य करते समय सरकार के प्रशासनिक नियंत्रण के अधीन नहीं था और प्रासंगिक समय पर सरकार का सेवक नहीं होकर सरकार के आदेशों के अधीन नहीं था, आयुक्त के रूप में बशर्ते कि कार्य या चूक सेवा के सदस्य के रूप में ईमानदारी या कर्तव्य के प्रति समर्पण के लिए उसकी प्रतिष्ठा पर प्रतिबिंबित होगी। इस संदर्भ में पीयर्स बनाम फोरस्ट की निम्नलिखित टिप्पणियों का संदर्भ दिया जा सकता है। फोस्टर (1):

"यदि कोई नौकर सेवा में अपने कर्तव्य का निष्ठापूर्वक निर्वहन नहीं करता है, तो यह गलत आचरण है जिसके हेतु तत्काल बर्खास्तगी को उचित ठहराता है। यह गलत है। मेरे

विचार में ऐसा कदाचार सेवा या व्यवसाय में होना आवश्यक नहीं है। यह पर्याप्त है यदि यह ऐसा आचरण है जो पूर्वाग्रहपूर्ण है या स्वामी के हितों या प्रतिष्ठा के लिए पूर्व न्यायिक होने की संभावना है, और स्वामी के लिए उचित होना केवल अगर वह उस य समय इसका पता लगाता है, बल्कि तब भी जब वह बाद में इसका पता लगाता है, ऐसे सेवक को बरखास्त करें"।

इस संबंध में अपीलार्थी द्वारा यह भी तर्क दिया गया था कि आयुक्त को धारा 80 के तहत एकमात्र निगम बनाया गया था, जो कि एक अलग और स्वतंत्र व्यक्तित्व होकर वह सरकार के नियंत्रण के अधीन नहीं था और उसके खिलाफ कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं की जा सकती थी। हमें नहीं लगता कि इस तर्क में कोई सार है। यह सच है कि आयुक्त अधिनियम की धारा 80 के तहत एकमात्र निगम बनाया गया है, जिसके अनुसार आयुक्त के पास स्थायी उत्तराधिकार और एक सामान्य मुहर होगी और वह अपने निगमित नाम पर मुकदमा कर सकता है और उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है। अधिनियम की धारा 81 (1) में 'द मद्रास हिंदू रिलीजियस एंड चैरिटेबल एंडॉवमेंट्स एडमिनिस्ट्रेशन फंड' नामक एक

कोष की स्थापना का प्रावधान है और आगे कहा गया है कि यह कोष आयुक्त में निहित होगा। अपीलार्थी के लिए यह तर्क दिया गया था कि अधिनियम की धारा 80 द्वारा बनाई गई निगमित इकाई का एक अलग कानूनी व्यक्तित्व है। लेकिन निगम समुच्चय के बीच एक न्यायिक अंतर है। निगम समुच्चय और निगम एकल को निगम समुच्चय के रूप में एक अलग कानूनी व्यक्तित्व नहीं दिया जाता है। जैसा कि मैटलैंड ने कहा:

"अगर हमारा निगम एकल वास्तव में मनुष्य की नीति द्वारा बनाया गया एक कृत्रिम व्यक्ति था, तो हमें उसकी अक्षमता आश्चर्य होना चाहिए, जब तक प्रथा या कानून इसकी सहायता नहीं करते। जैसा हमें बताया जाता है कि तब तक यह एक अचल संपत्ति के मालिक नहीं हैं, यहां तक कि एक वास्तविक अचल संपत्ति भी नहीं। एक अलग और समान रूप से सुरुचिपूर्ण उपकरण को अपनाया गया था और उसके मंत्री जिन्हें मध्य युग के अंत में उन वकीलों द्वारा अपनाया गया जिन्होंने खुद को निगम के सिद्धांत स्पष्ट रूप से यह कहते हुए कि पार्शियनों का नियम एक निगम समुच्चय है विवर्जित रखा था। चरच के आभूषणों के लिए एक स्वामित्व वाला 'विषय' प्रदान करने हेतु एक अलग और साफ रूप से वैधानिक प्राधिकारी या भूमि में ब्याज के लिए अनुबंध में प्रवेश नहीं कर सकता है।

"यह एक वास्तविक संपत्ति को व्यक्तियों के उत्तरधिकार में बिना आवधिक आवश्यकता के संचारित करने का उपकरण था। यह आराम कभी

नहीं था कि इस उपकरण को अपने विकसित अस्तित्व के साथ एक मनोवैज्ञानिक व्यक्ति के रूप में खड़ा किया जाए। निगम एकमात्र से निपटने में अदालतों ने कभी इस एक निगम समुच्चय के समान विशेषताओं वाला नहीं माना है। उन्होंने इसकी उपयोगिता वास्तविक, या असाधारण रूप से, यदि प्रथा द्वारा, जैसा कि बर्ड वी. विल्फोर्ड, और अब कानून द्वारा, किसी पदधारी को सम्पत्ति, सामान्य या धर्मोपदेशक के अपने उत्तराधिकारी को देने तक सिमित कर दिया है।

तदनुसार हम अपीलार्थी के इस तर्क को अस्वीकार करते हैं कि अधिनियम की धारा 80 के अंतर्गत आयुक्त का निगम के रूप में एक अलग कानूनी व्यक्तित्व है। और वह आयुक्त के रूप में अपनी क्षमता में किए गए किसी भी कार्य या चूक के लिए अनुशासनात्मक कार्यवाही से मुक्त है। हमारी राय में, अधिनियम की धारा 80 और 81 का लागू करने में विधानमण्डल का उद्देश्य एक अलग निधि का गठन करना था और उस निधि को एकमात्र निगम के रूप में आयुक्त में निहित करने का प्रावधान करना था और इस तरह उस निधि में स्वामित्व के संचरण में आवधिक हस्तांतरण की आवश्यकता से बचना था।

हम आगे अपीलार्थी के इस तर्क की जांच करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि आयुक्त अधिनियम के तहत पट्टों को मंजूरी देने में एक अर्ध-न्यायिक कार्य का प्रयोग कर रहा था और इसलिए उसके आदेश अधिनियम

के प्रावधानों के अलावा प्रश्न नहीं उठाया जा सकते। प्रस्ताव यह था कि अर्ध-न्यायिक आदेश, जब तक कि अधिनियम के प्रावधानों के तहत जब तक रद्द न किया जाये अंतिम और बाध्यकारी हैं और कार्यकारी सरकार द्वारा अनुशासनात्मक कार्यवाही के माध्यम से पूछताछ नहीं की जा सकती है। एन. आर. आई. ने यह तर्क दिया गया था अधिनियम की धारा 29 (4) में एक अपील प्रदान की गयी है। पट्टा के लिए मंजूरी और यह कि किसी भी व्यथित पक्ष के लिए ऐसी अपील दायर करने और आयुक्त के आदेश की वैधता या शुद्धता पर सवाल उठाने के लिए खुला है और सरकार भी अधिनियम की धारा 99 के आदेश की शुद्धता व वैधता की जांच कर सकती है। यह कहा गया था कि जब तक इन तरीकों को नहीं अपनाया गया था तो सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू नहीं करने और पट्टों को मंजूरी देने वाले आयुक्त के आदेश की वैधता की पुनः जांच करने का अधिकार नहीं था।

आरोप संख्या 1 का पहला भाग यह था कि अपीलार्थी ने अधिनियम के प्रावधानों और उसके तहत बनाए गए नियमों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए, आरोपों में उल्लिखित मामलों में पट्टों को मंजूरी देने के आदेश पारित किए। आरोप का प्रासंगिक हिस्सा इस प्रकार है:

"आप 1-2-1957 से 19-10-62 तक आयुक्त एच. आर. एंड सी. ई. (प्रशासन) विभाग थे। धारा 29 मद्रास हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती

अधिनियम 1951 के तहत किसी भी अचल संपत्ति का कोई भी विनिमय, बिक्री या बंधक और 5 साल से अधिक की अवधि के लिए कोई पट्टा किसी धार्मिक संस्था से संबंधित या किसी भी उद्देश्य के लिए सम्पन्न किया गया धार्मिक संस्था तब तक अमान्य होगी जब तक कि वह आयुक्त द्वारा स्वीकृत या संस्था के लिए आवश्यक व लाभदायक होने की स्वीकृती नहीं प्राप्त हुयी है। धारा के परंतुक के तहत, प्रस्तावित लेन-देन का विवरण कम से कम एक दैनिक समाचार पत्र में प्रकाशित कर प्रस्तावों के संबंध में आपत्तियों और सुझावों को आमंत्रित किया जायेगा। और प्राप्त सुझावों और आपत्तियों, यदि कोई हों, पर मंजूरी देने से पहले आयुक्त द्वारा विचार किया जाना चाहिए। अधिनियम की धारा 29, खंड (1) और (3) के तहत बनाए गए नियमों के अनुसार, अचल संपत्ति के पांच साल से अधिक की अवधि के लिए पट्टे के प्रस्तावों की सूचना किसी धार्मिक संस्था से संबंधित प्रस्तावित लेन-देन की प्रकृति, सर्वेक्षण संख्या, विस्तार और सीमाओं, संभावित मूल्य या किराये के संबंध में संपत्तियों और जानकारी का सही विवरण शामिल करेंगे। अधिनियम की धारा 100 (2) के तहत बनाए गए नियमों में प्रावधान है कि किसी धार्मिक संस्थान से संबंधित भूमि, भवनों, स्थलों या अन्य अचल संपत्तियों और अधिकारों के सभी पट्टे सार्वजनिक नीलामी द्वारा दिए जाएंगे। नीलामी द्वारा जारी जनता द्वारा दिए गए पट्टों के अलावा उपायुक्त की पूर्व मंजूरी के अलावा नीलामी का सहारा नहीं लिया जाना चाहिए। उपरोक्त से यह पता चलता है कि देवस्वोम भूमि को पट्टे

पर देने का प्रस्ताव न्यासी या 'योग्य व्यक्ति' द्वारा शुरू किया जाना चाहिए और इस तरह के पट्टे आमतौर पर केवल नीलामी द्वारा दिए जाने हैं। असाधारण मामलों में, न्यासी द्वारा भूमि को पिछले प्रावधानों के अधीन नीलामी के बिना पट्टे पर दिया जा सकता है। उपायुक्त प्रावधान की मंजूरी यह प्रावधान भूमि को निपटाने के लिए अधिकृत नहीं करता है। हालाँकि, आयुक्त को निपटाने के लिए अधिकृत नहीं करता है बिना नीलामी वाली भूमि। उसका कर्तव्य है कि आपत्तियों और सुझाव मंगाने के संबंध में न्यासी से प्स होने वाले प्रस्ताव का नोटिस देना और यदि वह इस बात से संतुष्ट हैं कि लेन-देन देवस्वोम के लिए फायदेमंद है, तो आयुक्त द्वारा मंजूरी दिए जाने के बाद भूमि को पट्टे पर देने के लिए आगे कदम न्यासी जो कि पट्टेदार या प्रस्तावित पट्टेदार है के द्रा लिये जाना चाहिए। उपरोक्त के विपरीत प्रावधान पट्टों को आपके द्वारा निम्नलिखित में स्वीकृत किया गया था।

यह स्पष्ट है कि प्रासंगिक आरोपों के साथ पठित आरोप संख्या 1 का पहला भाग यह है कि अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए और नियमों के तहत और इस बात से संतुष्ट हुए बिना कि पट्टे देवस्वम के लिए फायदेमंद थे, अपीलार्थी ने उन्हें मंजूरी दे दी और अपीलार्थी की यह कार्रवाई अपने आधिकारिक कर्तव्यों के निर्वहन में कदाचार, अनियमितता और घोर लापरवाही का खुलासा करती है।

इसलिए आरोप कदाचार और लापरवाही का है जो अधिनियम की धारा 29 और पट्टों को मंजूरी देने में इसके तहत नियम के प्रासंगिक प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना द्वारा प्रकट किया गया है। प्रत्यर्थियों की ओर से श्री सरजू प्रसाद और श्री बिंद्रा दोनों ने तर्क दिया कि आयुक्त अधिनियम की धारा 29 के तहत पट्टों को मंजूद देने में अर्ध-न्यायिक कार्यों का निर्वहन नहीं कर रहे थे। लेकिन हम इस धारणा पर आगे बढ़ेंगे कि आयुक्त अधिनियम की धारा 29 के तहत पट्टे देने में अर्ध-न्यायिक कार्य कर रहा था। उस धारणा पर भी हम संतुष्ट हैं कि यदि अपीलार्थी की ओर से अपने आधिकारिक कर्तव्य के निर्वहन में लापरवाही या कदाचार दिखाने के लिए प्रथम दृष्टया सामग्री थी तो सरकार अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने की हकदार थी। यह सच है कि यदि धारा 29 के प्रावधान या नियमों की अवहेलना की जाती है आयुक्त का आदेश अवैध है और इस तरह के आदेश के तहत अपील अधिनियम की धारा 29 (4) या धारा 99 में निगरानी में सवाल उठाया जा सकता है। लेकिन वर्तमान कार्यवाही में वह आयुक्त के निर्णय की वैधता या यथार्थता को चुनौती नहीं दी गयी है लेकिन आयुक्त के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अपीलार्थी का आचरण व अपीलार्थी के खिलाफ कार्यवाही की गई क्योंकि इस मामले में अपने कार्यों का प्रभार लेते हुए उन्होंने अधिनियम और नियमों के प्रावधानों की पूरी तरह से अवहेलना की। यह वह तरीका है जिसमें उन्होंने अपने कार्यों का निर्वहन किया, जिसे इन कार्यवाहियों में उठाया जाता है। दूसरे शब्दों में, आरोप

और आरोप इस प्रभाव के हैं कि आयुक्त के रूप में अपनी शक्तियों का उपयोग करते हुए अपीलार्थी ने अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया और इस तरह के कदाचार के संबंध में ही उसके खिलाफ कार्रवाई की जा रही है अतः यह स्पष्ट है कि यद्यपि पट्टों को मंजूरी देने की प्राथमिकता और वैधता पर अधिनियम के तहत अपील या संशोधन में सवाल उठाया जा सकता है, लेकिन यदि इस बात का प्रमाण है कि आयुक्त ने अपने कर्तव्यों के निर्वहन में घोर लापरवाही से काम किया था या कि वह ईमानदारी से या सद्भावना से काम करने में विफल रहे थे या उन्होंने उन निर्धारित शर्तों का पालन नहीं करें जो कि वैधानिक शक्ति के प्रयोग के लिए आवश्यक हैं। तो सरकार को अनुशासनात्मक कार्रवाई करने से नहीं रोका जा सकता है। हमें कोई कारण नजर नहीं आता कि सरकार क्यों यह दिखाने के उद्देश्य से ऐसा नहीं कर सकते कि आयुक्त अपनी शक्ति के प्रयोग के लिए निर्धारित शर्तों की पूरी तरह से अवहेलना करते हुए कार्य किया या कि वह दुराचार या घोर लापरवाही का दोषी था। तदनुसार हमारी राय है कि अपीलार्थी इस मामले के पहलू पर अपने तर्क को साबित करने में असमर्थ रहा है।

हम अपीलार्थी के अगले तर्क पर विचार करने के लिए आगे बढ़ते हैं कि आरोप संख्या 1 का पहला भाग टिकाऊ नहीं है क्योंकि एकमात्र नियम जिसका उल्लंघन किया गया है वह नीलामी के संबंध में नियम था। यह तर्क दिया गया कि नीलामी के संबंध में नियम 29(1) के दायरे में आने

वाले दीर्घकालिक पट्टों पर लागू नहीं होता है। इसलिए अधिनियम और आरोप संख्या 1 का पहला भाग टिकाऊ नहीं था। हम इस तर्क को सही मानने में असमर्थ हैं। आरोप संख्या 1 के संबंध में आरोपों का बयान अधिनियम की धारा 29 के प्रावधानों को निर्धारित करता है। अधिनियम के clause (1) & (3) के तहत बनाए गए नियम उस धारा और अधिनियम की धारा 100 (2) (एम) के तहत बनाए गए नियम अधिनियम और यह कहता है कि उपरोक्त प्रावधानों के विपरीत पट्टों को मंजूरी दी गई थी। अधिनियम की धारा 100 (2) (क) के तहत बनाये गये नियमों का नियम 1 इस प्रकार है:

"भूमि, भवन, स्थल और अन्य अचल संपत्तियों के सभी पट्टे और किसी धार्मिक संस्थान से संबंधित संपत्ति के अधिकार उन स्थानों पर आयोजित सार्वजनिक नीलामी द्वारा पोषण किया जाएगा जहां संपत्तियां स्थित हैं या अधिकार मौजूद हैं। उपायुक्त यदि संतुष्ट हो कि किसी भी मामले में पट्टे दी जाने वाली प्रस्तावित संपत्तियां जहां स्थित है, उस स्थान के अलावा किसी अन्य स्थान पर नीलामी आयोजित करने की अनुमति तब दी जा सकती है यदि उचित बोली प्राप्त करने हेतु हानिकारक नहीं होगा, लेकिन किसी ऐसे गाँव

में कोई नीलामी आयोजित नहीं की जाएगी जो जहां संपत्ति स्थित है उस जिले के अलावा किसी अन्य जिले में स्थित है"।

प्रत्यर्थियों की ओर से यह तर्क दिया गया कि सभी पट्टों को सार्वजनिक नीलामी द्वारा बनाया जाना था और आयुक्त को नीलामी के बिना किसी भी पट्टे को मंजूरी देने का कोई अधिकार नहीं था और सार्वजनिक नीलामी को माफ करने की शक्ति उपायुक्त को दी गई है न कि नियम 9 के तहत आयुक्त को। इस संबंध में अपीलार्थी द्वारा नियम 2(2) का संदर्भ दिया गया था जिसमें यह प्रावधान किया गया है कि एक साल या उससे अधिक की अवधि के लिए पट्टे के मामले में नीलामी एक महीने के भीतर और एक साल से कम की अवधि के लिए पट्टे के मामले में, उस अवधि जिसके लिए पट्टा दिया जाना है, के बारे में न्यासी के निर्णय की तारीख के 15 दिनों के भीतर आयोजित की जानी है। यह कहा गया था कि ऐसे मामले में न्यासी के निर्णय की तारीख से एक महीने के भीतर नीलामी आयोजित करना असंभव होगा क्योंकि धारा 29 के तहत नोटिस और आपत्तियों की सुनवाई के बीच न्यूनतम 30 दिनों की अवधि निर्धारित की गई है। यह कहा गया था कि न्यासियों को पट्टा की अवधि तय करने के

बाद और उसके लिए आवेदन भेजने के लिए आयुक्त स्वयं नोटिस जारी करेंगे और न्यासियों को स्वयं की सूचना देने हेतु कुछ और समय देना होगा। हमें नहीं लगता कि इस तक कोई पदार्थ है। क्योंकि सबसे पहले नियम 1 के तहत न्यासी नीलामी आयोजित कर सकते हैं चाहे वो 5 साल से अधिक अवधि के लिए पट्टों के लिए हो और फिर आयुक्त को प्रस्ताव भेजें। तदनुसार हमारी राय है कि नियम 100 (2) के तहत नियम 1 बनाये गये हैं। धारा 29(1) के तहत 5 वर्षों से अधिक के पट्टों की नीलामी के लिए प्रावधान करता है और आयुक्त को इसलिए धारा 29(1) के तहत नीलामी के बिना किसी भी पट्टे को मंजूरी देने का कोई अधिकार नहीं है। दूसरे शब्दों में, धारा 100 (2) (एम) के तहत बनाये गये नियम 1 में 'नीलामी' सभी पट्टों को शामिल करता है और अधिनियम की धारा 29 (1) के दायरे में आने वाले 5 वर्ष से अधिक के पट्टों के संबंध में कोई अपवाद नहीं करता है। हम तदनुसार मामले के इस पहलू पर अपीलार्थी के इस तर्क को अस्वीकार करते हैं।

आरोप संख्या 1 के दूसरे भाग के संबंध में, यह तर्क दिया गया था अपीलार्थी कि आयोग के लिए अधिनियम में कोई निषेध नहीं है जो आयुक्त को स्वयं पट्टों के लिए प्रस्ताव शुरू करने से रोकता है और इसलिए आरोप को बनाए नहीं रखा जा सकता है। विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या आयुक्त सभी नियमों और शर्तों के साथ एक निर्दिष्ट व्यक्ति के पक्ष में पट्टे

के लिए एक प्रस्ताव शुरू कर सकता है। अपीलार्थी द्वारा यह विवादित नहीं है कि न्यासी, न्यास की संपत्तियों के पट्टों के लिए प्रस्ताव शुरू करने वाला उचित व्यक्ति है लेकिन यह तर्क दिया गया कि अधिनियम की धारा 20 के तहत आयुक्त पट्टों के लिए विशिष्ट प्रस्ताव बना सकता है और धारा 29 के तहत उन्हें स्वयं मंजूरी दे सकता है। धारा 20 का पहला भाग सभी धार्मिक दानों पर सामान्य अधीक्षण और आयुक्त के प्रशासनिक नियंत्रण की बात करता है। प्रावधान में आगे यह कहा गया है कि इस प्रकार के अधीक्षण और नियंत्रण में ऐसा आदेश पारित करने की शक्ति शामिल होगी जो यह सुनिश्चित करने लिए आवश्यक हो कि जिस उद्देश्य के लिए ऐसे दान की स्थापना की गयी थी उसके अनुसार अधीक्षण रहा है। हमारी राय में, इस धारा की भाषा यह नहीं बताती है कि कमिश्नर में स्वयं की संपत्तियों के लिए पट्टे बनाने के लिए विशिष्ट प्रस्ताव बनाने की शक्ति निहित है। अधिनियम की धारा 29 के तहत आयुक्त को हस्तांतरण और 5 वर्ष से अधिक की अवधि के लिए पट्टों को मंजूरी देने की विशिष्ट शक्ति दी गयी है। उस धारा का तात्पर्य है कि पट्टों के लिए प्रस्ताव न्यासियों से उत्पन्न होना चाहिए और स्वयं आयुक्त से और यह कि आयुक्त का एकमात्र कार्य ऐसे प्रस्तावों को मंजूरी देनी है। अगर धारा 20 यह समझा जाता है कि आयुक्त को प्रस्ताव शुरू करने की शक्ति है तो इसका मतलब यह होगा कि आयुक्त अपने द्वारा शुरू किए गए प्रस्तावों पर स्वयं निर्णय ले सकते हैं। यह नहीं माना जा सकता है कि विधायिका ने इस तरह के परिणाम का

विचार किया था। इस संदर्भ में यह याद रखना आवश्यक है कि सामान्य विधि कानून न्यासी वह व्यक्ति होता है जो देवस्वोम संपत्तियों का पट्टा देने या अनुदान देने में सक्षम होगा। यह सच है कि विधायिका ने अनुदान की शक्ति और पट्टे देने की शक्ति पर अधिनियम की धारा 29 द्वारा प्रतिबंध लगा दिया है। लेकिन न्यासी की शक्ति पर वैधानिक प्रतिबंध की व्याख्या इस तरह से नहीं की जानी चाहिए कि अनुदान या पट्टे के संबंध में उसकी सभी शक्तियों को निरस्त कर दिया जाए। तदनुसार हमारी राय है कि आयुक्त के पास न्यास की संपत्तियों के पट्टे के लिए विशिष्ट प्रस्ताव शुरू करने की कोई शक्ति नहीं है और इस बिंदु पर अपीलार्थी के तर्क को खारिज किया जाना चाहिए।

आरोप संख्या 1 का तीसरा भाग एक अलग आरोप नहीं है, लेकिन आरोप संख्या 1 के अन्य भागों के साथ इसकी जांच की जा सकती है। आरोप 2,3 और 4 के संबंध में अपीलार्थी की ओर से यह नहीं दिखाया गया है कि अधिकारिता में कोई दोष है और प्रतिवादी जांच के साथ आगे नहीं बढ़ सकते हैं।

विचार करने के लिए अगला प्रश्न यह है कि क्या अपीलार्थी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही वैध रूप से नियमों के नियम 4 (1) (बी) द्वारा आवश्यक रूप से स्थापित की गई थी। अपीलार्थी द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया था कि यह स्थापना कार्यवाहियां करने के लिए सरकार

का कोई औपचारिक आदेश नहीं था। प्रत्यर्थियों के लिए यह तर्क दिया गया था कि एस. गोविंदा मेनन बनाम मामले में केरल उच्च न्यायालय के फैसले के कारण प्रश्न को *res judicata* वर्जित किया गया है। उस मामले में, निलंबन के आदेश को अपीलार्थी द्वारा 1963 के ओ. पी. संख्या 485 में एक रिट याचिका द्वारा चुनौती दी गई थी, जिसे वैद्यलिंगम, जे. ने खारिज कर दिया था। उस निर्णय के खिलाफ अपीलार्थी ने एक अपील दायर की जिसे खंड पीठ ने खारिज कर दिया। अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया था कि उस मामले में विचार किया जाने वाला एकमात्र मुद्दा यह था कि क्या अपीलार्थी को आरोप तय होने से पहले निलंबित किया जा सकता है और *res judicata* का नियम लागू नहीं होता है। हम अपीलार्थी के पक्ष में यह मान लेंगे कि प्रश्न *res judicata* द्वारा वर्जित नहीं है। फिर भी, हमारी राय है कि अपीलार्थी के इस तर्क में कोई सार नहीं है कि नियम 4 (1) के तहत अनुशासनात्मक कार्यवाही की कोई वैध संस्था नहीं थी। सरकार के आदेश का अवलोकन, प्रदर्श पी.-1, स्वयं इंगित करेगा कि अपीलार्थी के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। प्रदर्श पी-1 इस प्रकार है:

"सरकार को श्री एस. गोविंदा मेनन, आई. ए. एस. प्रथम सदस्य, राजस्व बोर्ड और पूर्व आयुक्त, हिंदू धार्मिक और धर्मार्थ बंदोबस्ती (प्रशासन) के खिलाफ आधिकारिक कदाचार के गंभीर आरोपों के संबंध में कई

याचिकाएं मिली हैं। आरोपों की प्रारंभिक जांच से प्रथम दृष्टया पता चला है कि अधिकारी भ्रष्टाचार, भाई-भतीजावाद और गंभीर प्रकृति की अन्य अनियमितताओं का दोषी है। केरल उच्च न्यायालय ने ओ. पी. 2306/62 में दिनांक 12 फरवरी 1963 को अपने फैसले में अधिकारी के आचरण पर टिप्पणी दी थी। फैसला इस अवलोकन से शुरू होता है कि 'इस मामले ने, यदि इससे बहुत कम लाभ हुआ है, तो श्री पुलपल्ली देवस्वम के रूप में जानी जाने वाली एक धार्मिक संस्था से संबंधित मूल्यवान वन भूमि के निपटान के संबंध में एक अशांत स्थिति को उजागर करने का काम किया है, जिसका मुझे विश्वास है कि लोक प्रशासन के हित में सक्षम प्राधिकारी द्वारा उचित नोटिस लिया जाएगा और हमारी वन संपत्ति का संरक्षण इस विशेष संस्था के हित में कम से कम नहीं होगा'।

उपरोक्त मामले में निर्णय और प्रारंभिक एक्स-ब्रांच पुलिस की रिपोर्ट ने आरोपी अधिकारी की ओर से गंभीर अनियमितता और आधिकारिक कदाचार के निम्नलिखित गंभीर आरोपों का खुलासा किया है।

एक्स-शाखा द्वारा आरोपों की विस्तृत जांच जारी है। मामले में साक्ष्य बड़ी संख्या में उप अधिकारियों से एकत्र किया जाना है जो कि अभियुक्त अधिकारी की राजस्व बोर्ड के प्रथम सदस्य की क्षमता में उससे अधीनस्थ हो।

उचित जाँच के लिए यह आवश्यक है कि अधिकारी को उस पद पर बने रहने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। अधिकारी के खिलाफ आरोपों की प्रकृति और घेराबंदी के रुख को ध्यान में रखते हुए उसे निलंबन के दायरे में लाना उचित होगा। श्री एस. गोविंदा मेनन आई. ए. एस. प्रथम सदस्य राजस्व बोर्ड को इसलिए उसके खिलाफ शुरू की गयी अनुशासनात्मक कार्यवाही पूर्ण होने तक अखिल भारतीय सेवा (अनुशासन और अपील नियम 1955) के नियम 7 के तहत निलंबित कर दिया गया है।

इस दस्तावेज़ के अवलोकन से पता चलता है कि सरकार ने उस तारीख तक मामले में की गई कार्यवाही को स्वीकार कर लिया था और अनुशासनात्मक कार्यवाही के साथ आगे बढ़ने का फैसला किया था। हमारी राय में, नियमों के नियम 4 (1) के तहत राज्य सरकार के आदेश के तहत पूर्ण कार्यवाही शुरू करने के लिए कोई औपचारिक आदेश आवश्यक नहीं है और प्रदर्श पी-1 को अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने वाले नियमों के नियम 4 (1) के तहत एक आदेश माना जाना चाहिए।

अंत में यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलार्थी के निलंबन का आदेश दिनांक 8 मार्च, 1963, नियमों के नियम 7 के अनुपालन में नहीं है जिसमें कहा गया है:

"7. अनुशासनात्मक कार्यवाही के दौरान निलंबन:

(1) यदि आरोपों की प्रकृति और किसी भी मामले में परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, कोई अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू करने वाली सरकार का समाधान होता है कि उस सेवा के सदस्य जिसके खिलाफ ऐसी कार्यवाही की जाती है को निलंबित करना आवश्यक या वांछनीय है। शुरू किया कि सरकार मई [1967] 2 एस. सी. आर. (क) यदि सेवा का सदस्य इसके तहत सेवा कर रहा है तो उसे निलंबन के तहत रखने का आदेश पारित करता है, या

यह बताया गया कि 6 जून, 1963 को निश्चित आरोप तय किए गए थे और सरकार के पास आरोप तय करने की तारीख से पहले अपीलार्थी को निलंबित करने का कोई अधिकार नहीं था। नियम 5 (2) का संदर्भ दिया गया था जिसमें कहा गया है:

"5. (2) जिन आधारों पर कार्यवाही प्रस्तावित है उन्हें कार्रवाई को एक निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में घटाया जाएगा जो कि आरोपों के सारांश जिन पर प्रत्येक आरोप आधारित है और किसी अन्य का जिन परिस्थितियों का मामले में आदेश पारित करने के लिए ध्यान में रखना प्रस्तावित है को सदस्य को सूचित किया जाएगा।"

अपीलार्थी द्वारा यह तर्क दिया गया था कि नियम 5 (2) और नियम 7 में आने वाले "आरोप" शब्द का वही अर्थ दिया जाना चाहिए और नियम 7 के तहत निलंबन का कोई आदेश अपीलार्थी के खिलाफ नियम 5 (2) के तहत आरोप तय किए गए हैं से पहले पारित नहीं किया जा सकता था। हमें नहीं लगता कि इस तर्क में कोई सार है नियम 5 (2) में निर्धारित किया गया है कि जिन आधारों पर कार्रवाई करने का प्रस्ताव है, उन्हें एक निश्चित आरोप या आरोपों के रूप में घटा दिया जाएगा। नियम 5 (3) के तहत सेवा के एक सदस्य को आरोप या आरोपों के प्रति उसके बचाव का लिखित आवेदन जमा करना आवश्यक है। नियम 5 (2) के तहत आरोप विरचना सेवा के सदस्य को उसके खिलाफ मामले को सक्षम करने के लिए आवश्यक है। नियम 7 (1) की भाषा हालाँकि यह अलग है और यह नियम प्रदान करता है कि सरकार सेवा के किसी सदस्य को निलंबन के तहत रखा जा सकता है आरोप की प्रकृति और किसी भी मामले में परिस्थितियों के अनुसार "यदि सरकार संतुष्ट है कि उसे निलंबित करना आवश्यक है। नियम में भाषा के अंतर को देखते हुए 5 (2) और नियम 7 में हमारी राय है कि "आरोप" शब्द नियम 7 (1) में सेवा के सदस्य के खिलाफ आरोप को दर्शाने के रूप में एक व्यापक अर्थ दिया जाना चाहिए। मामले के इस पहलू पर अपीलार्थी के तर्क को अस्वीकार किया जाता है।

पहले व्यक्त किये गये कारणों से हम मानते हैं कि अपीलार्थी को अनुच्छेद 226 के तहत निषेध की रिट प्राप्त करने हेतु पर्याप्त आधार नहीं सुझाये गये हैं और केरल उच्च न्यायालय के बहुमत का निर्णय 5 जनवरी, 1966 सही है और यह अपील खारिज होने योग्य है। मामले की परिस्थितियों में हम कोस्ट के बारे में कोई आर्डर नहीं करते हैं।

अपील खारिज की गयी।

(यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी **सुश्री अनुराधा परिहार** (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।)